ऑनलाइन अधिगम | ग्रामीण इलाक़ों की वास्तविकता

राममोहन खानापुरकर

कोरोना वायरस महामारी के कारण पैदा हुए व्यवधान ने भारत के शिक्षा-क्षेत्र को बड़ी मुश्किल स्थिति में ला खड़ा किया है। अब या तो ऑनलाइन शिक्षा की नई प्रणाली को अपनाना था या ऑफ़लाइन के साथ शिथिल हो जाना था। ऑनलाइन शिक्षा का विकल्प कई स्कूलों के लिए एक भारी बोझ बन गया, विशेष रूप से वे स्कूल जो अल्प सुविधा प्राप्त ग्रामीण इलाक़ों में थे। इसका प्रमुख कारण था - ऑनलाइन शिक्षा को निर्बाध बनाने के लिए ज़रूरी बुनियादी ढाँचे का अभाव। इसके कारण आलोचकों ने अखिल भारतीय स्तर पर डिजिटल शिक्षा का अचानक समर्थन करने पर सवाल उठाया। महाराष्ट्र में, *एक्टिव टीचर्स फोरम* जैसे सर्वेक्षणों ने 'डिजिटल डिवाइड' (Digital Divide) की हतोत्साहित करने वाली वास्तविकता को दिखाया। इसे कम करने के प्रयास में, शिक्षा मंत्रालय ने विद्यार्थियों के लिए वैकल्पिक शैक्षिक कैलेंडर (*Alternative Academic Calendar - AAC*) जारी किया, जिसमें शिक्षकों, विद्यार्थियों और यहाँ तक कि माता-पिता को लॉकडाउन के दौरान ऑनलाइन शिक्षा के लिए ख़ुद को तैयार करने के लिए दिशा-निर्देश दिए गए थे। यह दिशा-निर्देश यह मानकर दिए गए थे कि ऑनलाइन शिक्षा को अपनाने के लिए लोगों की थोड़ी-बहुत डिजिटल तैयारी होगी और संसाधन भी होंगे।

व्यावहारिक सच्चाई

वैकल्पिक शैक्षिक कैलेंडर (AAC) के अस्थायी डिजिटल समाधान प्रदान करने के घोषित उद्देश्य के विपरीत, इसने सीमित डिजिटल संसाधनों के साथ काम करने वाले शिक्षकों के लिए अतार्किक विकल्प प्रस्तुत किया। यह बात इस लेख के लिए साक्षात्कार देने वालों के बयान से पता चलती है। लॉकडाउन शुरू होने के बाद से भारत के ग्रामीण क्षेत्र गहन सामाजिक मन्थन के साक्षी बने जब आजीविका खो देने के कारण प्रवासी लोग शहरों से लौटने लगे। यहाँ तक कि गाँवों में छोटे-छोटे खेतों में काम करने वालों को भी अर्थव्यवस्था में मन्दी का दबाव महसूस हो रहा है। इस निराशाजनक पृष्ठभूमि में शिक्षकों से यह अपेक्षा की गई कि वे बच्चों को रोज़ ऑनलाइन शिक्षा में संलग्न करें। इसके अलावा लॉकडाउन के कारण शिक्षकों को आमने-सामने बैठकर चलने वाले कक्षा सत्रों का सहारा भी नहीं मिला। इसलिए कई दूर-दराज़ इलाक़ों के प्रथम-पीढ़ी के स्कूल जाने वाले बच्चों की औपचारिक शिक्षा में नियमितता बनाए रखने में अवरोध उत्पन्न हो गया।

कुछ ख़ास सरोकार

जनसांख्यिकी

जब महाराष्ट्र में पालघर ज़िले के जव्हार, मोखाडा और वाडा ब्लॉकों के ग्रामीण क्षेत्रों के जिला परिषद प्राथमिक स्कूलों के कुछ शिक्षकों के साथ चर्चा की गई तो दिलचस्प विवरण सामने आए।

इस क्षेत्र में अधिकतर अनुसूचित जनजाति के लोग बसे हुए हैं, जो मुख्य रूप से वरली, कोली मल्हार, ठाकुर, महादेव कोली और कटकरी जनजातियों के हैं। इनमें से कटकरी को विशेष रूप से कमज़ोर जनजातीय समूह के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इसकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति अन्य जनजातीय समूहों की तुलना में कमतर है। चूँकि परिवार समय-समय पर मज़दूरी करने के लिए शहरों में चले जाते हैं, इसलिए इन क्षेत्रों के कुछ बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। इससे शुरुआती कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों के सीखने का स्तर बाधित होता है जो उनकी बाद की स्कूली शिक्षा पर भी अकादमिक प्रभाव डालता है। इसलिए शिक्षक यह अपेक्षा करते हैं कि बच्चे जून के मध्य से सितम्बर के अन्त तक स्कूल में आते रहें। उसके बाद अगर कोई बच्चा अपने माता-पिता के साथ प्रवास करता है तो भी अगले साल उसके अधिगम को किसी-न-किसी तरह से आगे ले जाया जा सकता है।

सम्पर्क में रहना

छोटे बच्चों की सामाजिक-भावनात्मक ज़रूरतें होती हैं जो अक्सर स्कूल के सामाजिक वातावरण में होने वाली अन्त:क्रिया से पूरी होती हैं। शिक्षकों के साथ हुई चर्चा से पता चला कि उनकी मुख्य चिन्ता बच्चों को स्कूली शिक्षा की प्रक्रिया से जोड़कर रखने की थी – यह एक ऐसा उद्देश्य है जिसमें ऑनलाइन स्कूलिंग मदद नहीं करती। यह बात महाराष्ट्र सरकार के पहले (सतही) प्रयास से भी उपजी, जब 2015 में *एजूकेशनली प्रोगेसिव महाराष्ट्र ड्राइव* के तहत राज्य के स्कूलों को डिजिटल स्कूलों में परिवर्तित करने का प्रयास किया गया। लेकिन ग्रामीण पालघर ज़िले में फ़ील्ड विज़िट के

अनुसार वास्तविकता यह थी कि डिजिटल स्कूल की योजना ज़मीनी स्तर पर कुछ ज़्यादा हासिल नहीं कर पाई थी।

स्कूलों का प्रतीकात्मक महत्त्व

ऑनलाइन शिक्षा का वृत्तान्त, ग्रामीण पालघर क्षेत्र की संरचनात्मक रूप से विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से जुड़ा हुआ है। लॉकडाउन शुरू होते ही शहर की सुनसान सड़कों की तस्वीरें मीडिया में छाई हुई थीं। ग्रामीण क्षेत्रों ने तो केवल तब ध्यान आकर्षित किया जब शहरों से प्रवासी श्रमिकों के झुण्ड-के-झुण्ड अपने गाँवों की ओर जाने लगे। इसी तरह के प्रवास में ग्रामीण पालघर ज़िले के मूल निवासी, जो ठाणे, भिवण्डी, वसई, पुणे और पड़ोसी गुजरात के शहरों में ईंट की भट्टियों और औद्योगिक टाउनशिप काम करते थे, अपने गाँव लौट आए। जैसे-जैसे कोरोनोवायरस का आतंक फैला, ग्रामीणों ने अपने गाँवों में प्रवेश रोकने के लिए नाकाबन्दी शुरू कर दी। स्थानीय शिक्षकों को इस काम में लगा दिया गया कि वे प्रवासी मूल निवासियों की वापसी के कारण पैदा हुई घबराहट और सामाजिक तनाव को सम्बोधित करें। इसके अलावा, चूँकि स्कूल गाँव के क्षेत्र में आते थे, इसलिए शिक्षकों के पास स्कूलों के संसाधनों तक भी पहुँच नहीं थी।

ग्रामीण स्कूल के शिक्षक के लिए स्कूल तक पहुँच, प्रतीकात्मक रूप से महत्त्वपूर्ण है। किसी दूर-दराज़ के गाँव में स्थित स्कूल स्थानीय लोगों के लिए आशा का एक ऐसा स्रोत है जो ग़रीबी के स्थायी चक्र को तोड़ सकता है। इसके अलावा, दूर-दराज़ के गाँवों के स्कूल पारम्परिक अर्थों में कभी बन्द नहीं होते। बच्चे स्कूल के परिसर में कभी भी आ-जा सकते हैं। गाँवों में स्कूल एक सामुदायिक स्थान के रूप में कार्य करता है, इसलिए वह वहाँ के अन्य स्थानों से अलग है। यह पहलू शहरी क्षेत्रों की तुलना में अलग है, जहाँ स्कूल सिर्फ़ भौतिक संरचना होते हैं, कक्षा के समय के बाद खाली और लम्बी छुट्टियों के दौरान बेजान।

एक शिक्षक ने कहा कि लॉकडाउन के दौरान औपचारिक स्कूली शिक्षा के विचार को सक्रिय रख पाना मुश्किल था और यही बात चिन्ता का सबसे बड़ा विषय थी। जो भी इन इलाक़ों में काम करता है, वह जानता है कि स्थानीय समुदायों में औपचारिक शिक्षा की चेतना को बढ़ाने के लिए शिक्षक कितनी मेहनत करते हैं। शिक्षक नहीं चाहते थे कि लॉकडाउन के दौरान स्कूलों के बन्द होने के कारण वह चेतना कम होने लगे।

इस सन्दर्भ में देखा जाए तो ऑनलाइन शिक्षा, सीखने की प्रक्रिया को अवैयक्तिक और दूरवर्ती बना देगी, एक सक्रिय शिक्षक को निष्क्रिय कर देगी। इन इलाक़ों में शिक्षकों के सामने अलग तरह की चुनौतियाँ आती हैं, और उन्हें जानने के लिए इस पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। इसलिए, जब सरकार ने ऑनलाइन शिक्षा का निर्णय लिया तो शिक्षकों को संशय था और उन्होंने अलग रास्ता चुना।

स्कूल को घरों तक ले जाना

एक अच्छे शिक्षक और बच्चों के बीच एक मज़बूत भावनात्मक बन्धन होता है, ख़ासकर ग्रामीण इलाक़ों में। वहाँ शिक्षक न केवल एक शिक्षक होता है, बल्कि वह एक परामर्शदाता, सामाजिक कार्यकर्ता, दोस्त और यहाँ तक कि कुछ विशेष परिस्थितियों में एक माता-पिता के रूप में भी कार्य करते हुए बच्चों की भलाई का ध्यान रखता है। गाँव की सामाजिक-आर्थिक संरचना में एक अच्छा शिक्षक बहुत सम्मानित व्यक्ति होता है और उसे घरों में जाने और घर के सदस्यों के साथ बातचीत करने के लिए किसी भी प्रकार की अनुमति की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

इन पारिवारिक सम्बन्धों का लाभ उठाकर शिक्षकों ने स्कूल की गतिविधियों को बच्चों तक ले जाने का फैसला किया। उन्होंने यह भी महसूस किया कि इस रणनीतिक प्रक्रिया की आवश्यकता इसलिए भी थी क्योंकि औपचारिक शिक्षा को अभी भी इन क्षेत्रों के समुदायों में अनिवार्य आवश्यकता के रूप में नहीं माना जाता है। यानी इसका यह अर्थ भी हुआ कि औपचारिक अधिगम के लिए घर से जिस प्रकार समर्थन चाहिए - जैसे कि बच्चों के साथ अनौपचारिक रूप से बातचीत करना, पाठ्येतर पठन और लेखन आदि - वह यहाँ उपलब्ध नहीं होता है। घर के समर्थन और प्रिंट-समृद्ध परिवेश के अभाव में बुनियादी अधिगम बहुत कठिन हो जाता है। इसलिए शिक्षकों ने दृढ़ता के साथ महसूस किया कि सीखने में निरन्तरता बनाए रखने के लिए बच्चों तक पहुँचने का कोई अन्य माध्यम नहीं अपनाया जा सकता।

व्यावहारिक व क्रियात्मक दृष्टिकोण (Hands-on approach)

शिक्षकों ने निर्णय लिया कि वे प्रदत्त कार्य के पर्चों (असाइनमेंट शीट्स) को प्रिंट करके विद्यार्थियों को हर दूसरे दिन गाँव में एक निश्चित स्थान पर इकट्ठा करेंगे। स्कूल के बन्द होने के कारण जो बच्चे में खेतों में भटकने या अपने माता-पिता के खेतों पर काम करने के अभ्यस्त हो गए थे, उन्होंने ख़ुशी-ख़ुशी शिक्षकों की आज्ञा मान ली और लम्बी दूरी पैदल तय करके प्रातःकालीन सभा में पहुँचने से भी नहीं चूके। चूँकि शिक्षकों को प्रत्येक बच्चे के अधिगम के स्तर के बारे में गहरी समझ होती है, इसलिए उन्होंने बच्चों के लिए स्तर-विशिष्ट कार्यों की पहचान की और जो बच्चे कक्षा-उपयुक्त अधिगम के स्तर में पिछड़ रहे थे, उनकी आवश्यकताएँ भी पूरी कीं। बच्चों से कहा गया कि वे असाइनमेंट शीट घर ले जाएँ, उन

पर काम करें और अगली अगली बार वापस लेकर आएँ। एक शिक्षक लेमिनेटेड शीट्स ले आए, जिनपर लिखकर मिटाया जा सकता था और उनका इस्तेमाल बार-बार किया जा सकता था। एक अन्य शिक्षक ने अपने घर में पड़ी टाइल्स विद्यार्थियों को दीं और साथ में एक व्हाइटबोर्ड पेन भी दिया ताकि टाइल्स का प्रयोग एक अभ्यास-बोर्ड के रूप में किया जा सके।

शिक्षक बच्चों के सीखने की प्रक्रिया की समीक्षा करने के लिए हर दूसरे दिन गाँवों का दौरा करते। जव्हार के पहाड़ी क्षेत्रों के एक शिक्षक ने राज्य के लिए एक सामाजिक सर्वेक्षण करने के अवसर का उपयोग, उन बच्चों के साथ जुड़ने के लिए किया जो लॉकडाउन के कारण उनकी नज़रों से दूर थे। शहरी क्षेत्रों में सरकारी शिक्षकों को भी इस तरह के सर्वेक्षण करने पड़े। शहरों की आबादी घनी होती है और शिक्षकों को सर्वेक्षण करने के लिए अजनबियों के घरों में जाना पड़ता है, लेकिन अन्दरूनी ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वेक्षण करने वाले शिक्षक हर मिलने वाले के चेहरे को पहचानते हैं।

इसके अलावा जव्हार के आन्तरिक और पहाड़ी क्षेत्रों में गाँवों की यात्रा करना किसी अभियान से कम नहीं है, विशेष रूप से बारिश के मौसम में, जब मूसलाधार वर्षा में शाम को कोई भी पहाड़ी से उतरने का जोखिम नहीं उठा सकता है और ऐसी स्थिति में गाँव में ही रात बिताना बेहतर होता है। एक शिक्षक ने इस प्रकार के 'अभियानों' का उपयोग बच्चों के घरों के दरवाज़ों पर पाठ सम्बन्धी अभ्यासों के प्रिंट-आउट को चिपकाने के लिए किया। उन्होंने माता-पिता से अनुरोध किया कि वे बच्चों को इन अभ्यासों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें। अगले दौरे में उन्होंने अभ्यास के बारे में बच्चों की समझ की समीक्षा की और नए अभ्यास चिपकाए। एक शिक्षक अपने साथ एक व्हाइटबोर्ड लेकर गए और उसे एक सुरक्षित स्थल पर रख दिया। इस प्रकार एक छप्पर वाले आँगन का साफ़ फ़र्श और व्हाइटबोर्ड, गाँवों में उनके अनियत दौरों के दौरान एक अस्थायी कक्षा में बदल जाता।

इस तरह के सभी दौरों के दौरान, बच्चों के साथ बातचीत करते समय शारीरिक दूरी का जितना अधिक सम्भव हो उतना पालन किया गया। बच्चों को दैनिक जीवन में बेहतर स्वास्थ्यकारिता और स्वच्छता का पालन करने के लिए भी कहा गया। इन शिक्षकों के प्रयासों के चलते इस कठिन समय में भी इस दुर्गम इलाक़े में सीखना जारी रहा।

गम्भीर सरोकार

शिक्षकों द्वारा किए गए प्रयास कितने ही साधारण क्यों न हों, लेकिन उनकी वजह से औपचारिक अधिगम की शृंखला टूटने नहीं पाई। जिस प्रणाली में सरकारी शिक्षक काम करते हैं, वह पदानुक्रमित है और टॉप-डाउन एप्रोच से बाध्य हैं। शिक्षकों को बहुत कम स्वायत्तता मिलती है और अगर वे इसका उपयोग करते भी हैं तो उनके वरिष्ठ अफ़सरों की सतर्क आँखें अक्सर उनके जोश को ठण्डा कर देती हैं। यद्यपि इस लेख के लिए साक्षात्कार देने वाले शिक्षक इस वास्तविकता के प्रति सचेत थे, फिर भी उन्होंने अपने मन की बात सुनी और अपनी स्वायत्तता का प्रयोग करके बच्चों तक पहुँचे। वे चाहते तो ऑनलाइन शिक्षा-लक्ष्य की अप्राप्यता का हवाला देते हुए बड़ी आसानी से एक निष्क्रिय दृष्टिकोण अपना सकते थे। लेकिन यह बच्चों की औपचारिक स्कूली शिक्षा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता ही है कि उन्होंने ऑफ़लाइन शिक्षण की वास्तविकता को अपनाया और इसे ठीक करने की दिशा में काम करने के लिए प्रेरित किया।

यदि इस पूरे शैक्षिक वर्ष में स्कूल न खुले और आमने-सामने की कक्षाएँ शुरू न हुई तो क्या होगा? यह जानते हुए कि कक्षाओं के भीतर होने वाली वैयक्तिक अन्तःक्रियाओं का कोई विकल्प नहीं है, गाँवों में ग़रीब परिवारों के माता-पिता को लग सकता है कि अनियमित ऑनलाइन शिक्षा निरर्थक है। ऐसे में माता-पिता अपने बच्चों, ख़ासकर बेटियों को घर में रहने और घर के काम करने के लिए मजबूर कर सकते हैं। इसलिए शिक्षकों ने आमने-सामने बैठकर पढ़ाने के विचार को जीवित रखने का जो प्रयास किया है, वह ऐसे समय में बहुत मायने रखता है।

कोरोनोवायरस के कारण युवाओं को शिक्षित करते समय हमारी मान्यताओं, आकलन की कार्य-प्रणाली और प्रसार के तरीक़ों पर जो प्रभाव पड़ा है अब उन तरीक़ों का प्रलेखन करने का प्रयास किया जा रहा है। इन प्रयासों को सामाजिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षकों द्वारा की जा रही कोशिशों पर भी ध्यान देना चाहिए, जैसा कि इस लेख में उल्लिखित है। यदि यह शिक्षक न होते तो कई बच्चे ऑनलाइन शिक्षा की दरारों में फिसल कर गिर जाते और वहीं रह जाते तथा उनके सपने टूट जाते।



राममोहन खानापुरकर लोकनीति शोधकर्ता और शिक्षाविद हैं। वे दक्षिण एशिया की शिक्षा, इतिहास और सामूहिक स्मृतियों पर लिखते हैं। उन्होंने इंस्टिट्यूट ऑफ एजुकेशन, यूनिवर्सिटी कॉलेज लंदन, यूके से शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय विकास में एमए किया है। उनसे **rammohan.khanapurkar.18@ucl.ac.uk** पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : नलिनी रावल